एक राज्य एक भाषा !

बिहार बचाओ

भाषायी विवाद में सुलगता बिहार

उर्दू विधेयक

का

विरोध क्यों ?

आप अपना विरोध पोस्टकार्ड या तार द्वारा राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को भेजें ।

निवेदक :

द्वितीय राजभाषा विरोधी संघर्ष समिति

बिहार प्रदेश

यादव भवन, नयाटोला, पटना-४

सहयोग राशि—१/-

दूरभाष—५१३१०

मुहर्रम के दिन, इन्दिरा गांधी के जन्म दिवस, विद्यापति पर्व की पूर्व संध्या तथा 'राष्ट्रीय एकात्मकता सप्ताह' के प्रथम दिन यानि १९ नवम्बर '८० को बिहार के तथाकथित प्रगतिशील मुख्यमंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र ने बिहार की जनता को उर्दू अध्यादेश के रूप में एक ऐसा तोहफा भेंट किया जिसके परिणामस्वरूप बिहार आज भाषायी विवाद की आग में झुलस रहा है।

राज्य की अन्य ज्वलन्त समस्याओं को दरकिनार कर मंत्रीमंडल की प्रथम बैठक में प्रथम निर्णय, विधान सभा सत्र की तिथि की घोषणा एवं उसी दिन उर्दू अध्यादेश जारी करना आदि अनेक सवाल छोड़ भी दिये जायें, तो क्या उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देना किसी भी कसौटी पर उचित था ?

उर्दू या किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा के विरोध का प्रश्न ही नहीं है। सभी क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों के विकास, प्रचार-प्रसार, शिक्षण आदि हेतु सभी सम्मानित कदम उठाये जाने चाहिये। विकसित एवं साहित्य की दृष्टि से धनी भाषाओं को संविधान की अष्टम सूची में सम्मिलित किया जाना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या किसी भाषा को राजभाषा का दर्जा देने पर ही उसका विकास सम्भव है ? प्रश्न है एक राज्य में कितनी भाषाएँ राजभाषा होंगी और होंगी तो उसका आधार क्या होगा ?

द्वितीय राजभाषा का कानूनी पक्ष—

राज्य पुनर्गठन आयोग (१९५६) ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की अनुशंसा की। राजभाषा के सम्बन्ध में उसने अनुशंसा की कि 'जिस राज्य में ७०% से अधिक एक भाषायी समूह हो उस राज्य को एक भाषी तथा उसके अतिरिक्त ३०% से अधिक बोलने वाला कोई अन्य भाषा समूह हो उस राज्य को द्विभाषी घोषित किया जा सकता है।' आयोग ने यह भी कहा कि 'जिन जिलों में राज्य की घोषित राजभाषा के अतिरिक्त, ७०% से अधिक बोलनेवाला कोई अन्य भाषा समूह हो तो उस भाषा को उस जिला विशेष में सरकारी कामकाज के लिये अतिरिक्त राजभाषा घोषित किया जा सकता है।'

१९५६ के गृह मंत्रालय के स्मार-पत्र के पैरा ८ से १३, १९६१ के मुख्य-मन्त्री सम्मेलन तथा १९७५ में शिक्षा एवं समाज सेवा मंत्रालय के मन्त्री I. H. Gujral की अध्यक्षता में गठित (कमिटी फॉर प्रामोशन ऑफ उर्दू) ने भी राज्य पुनर्गठन आयोग की उपर्युक्त अनुशंसा को ही दोहराया है।

इस आधार पर बिहार में उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाने के औचित्य और उसके दुष्परिणाम पर विचार करें। बिहार राज्य में मुस्लिम आबादी १३·४८ प्रतिशत है, जिसमें ८·८६ प्रतिशत केवल उर्दू भाषी हैं। (७१ जनगणना) बिहार के जिन छः जिलों दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, भागलपुर, पूर्णिया कटिहार आदि में द्वितीय राजभाषा बनाने की अस्पष्ट बात कही गयी है उनमें से किसी भी जिले में उर्दू भाषियों की संख्या १० प्रतिशत से अधिक नहीं है।

डा० जगन्नाथ मिश्र ने राजभाषा आयोग की सिफारिश को ताक पर रखकर यह कहा कि जिन इलाकों में उर्दू भाषियों की संख्या १० प्रतिशत से अधिक होगी उन इलाकों में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दिया जायेगा। यदि ८·८६ प्रतिशत बोलनेवालों की भाषा द्वितीय राजभाषा बन सकती है तो फिर मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका, नागपुरी, संथाली जिनके बोलनेवालों की संख्या उर्दू भाषियों से कई गुना अधिक है, को क्यों नहीं राजभाषा का दर्जा दिया जाना चाहिये ? जबकि यह सभी जन भाषाएँ हैं। उर्दू अपने इतिहास में किसी दौर में न जनभाषा रही है और न हैं, इसका सबूत तो यही है कि उर्दू का कोई लोकसाहित्य नहीं। उर्दू तो बस शहरी और शीरीं जबान है।

यदि १० प्रतिशत वाले सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय तो फिर सिंहभूम, धनबाद और संथाल परगना में बंगला राजभाषा क्यों नहीं हो सकती है, जहाँ उसके बोलने वाले क्रमशः २७·२५ प्रतिशत २१·८९ प्रतिशत तथा १७·१० प्रतिशत है। उसी प्रकार संथाली भाषा जिसके बोलने वाले संथाल परगना में ३२·४२ प्रतिशत तथा सिंहभूम में १२·०७ प्रतिशत है उन इलाकों की राजभाषा बन सकती है। इस तर्क के आधार पर तो सिंहभूम

जिले में अकेले उड़िया, बंगला, संथाली, हिन्दी आदि चार-चार भाषाओं को राजभाषा का दर्जा देना होगा, क्योंकि उस जिले में इन सभी भाषा समूहों की संख्या १० प्रतिशत से अधिक है।

भाषा और धर्म—

किसी भी भाषा का सम्बन्ध क्षेत्र के साथ होता है न कि धर्म के साथ। हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है और उर्दू मुस्लिमों की, यह धारणा ही भ्रामक है। जो व्यक्ति जिस इलाके में रहता है उस इलाके की भाषा का प्रयोग करता है। तामिलनाडु का व्यक्ति फिर वह चाहे हिन्दु हो या मुसलमान तामिल का प्रयोग करता है न कि हिन्दी या उर्दू का। उसी प्रकार केरल का व्यक्ति मलयालम, कर्नाटक का कन्नड़, बंगला देश का मुसलमान बंगला और थाइलैंड का मुस्लिम थाई भाषा का इस्तेमाल करता है। भाषा के ही कारण पाकिस्तान का विभाजन हुआ। आज भी बंगला देश का मुसलमान उर्दू से कोसों दूर है।

परन्तु कुछ निहित स्वार्थी राजनीतिज्ञ जो दिन रात धर्मनिरपेक्षता का ढोल पीटते हैं, थोक वोट पर निगाह रख यह प्रचार करते हैं कि उर्दू मुसलमानों की जुबान है। बिहार में मिथिला में रहनेवाला मुस्लिम मैथिली बोलता है और भोजपुर में रहनेवाला भोजपुरी। उसे उर्दू से कभी विशेष लगाव नहीं रहा, फिर भी यह प्रचार किया जा रहा है कि उर्दू मुस्लिमों की भाषा है।

उर्दू का ऐतिहासिक संदर्भ—

उर्दू पर हिन्दुओं का उतना ही अधिकार है जितना मुस्लिमों का। आज भी पंजाब के अधिकांश लोग उर्दू का प्रयोग अधिक करते हैं। जायसी, रहीम, रसखान मुसलमान होते हुए भी फारसी के कवि नहीं बल्कि ब्रजभाषा या अवधी भाषा के कवि थे। मुसलमान होते हुए भी खुसरो खड़ी बोली हिन्दी के पहले कवि माने जाते हैं।

इससे बड़ी कोई झूठ हो नहीं सकती। इस्लाम का जन्म चुँकि अरब में हुआ, इसलिए कहा जा सकता है कि इस्लाम की मातृभाषा अरबी है, लेकिन इसके साथ यह नहीं कहा जा सकता कि इस्लाम धर्मानुयायियों की मातृभाषा

'अरबी' है। मातृभाषा का सम्बन्ध देशकाल से होता है, धर्म से नहीं। इतिहास साक्षी है कि सूफियों ने इस्लाम का प्रचार अवधी में प्रेमाख्यानकों के माध्यम से किया था फिर हिंदवी के माध्यम से तथा ईसाइयों ने भारत में ईसाइयत का प्रचार हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से किया। ईसाइयों की मूलभाषा हिब्रू थी और आज दुनिया के विभिन्न भाषा-भाषी ईसाई हैं। अतः डा० जगन्नाथ मिश्र जैसे राजनीतिक नेता जब उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानकर चलते हैं, तो यही कहना पड़ता है ऐसा धारणा एक दिमागी खलल है जो इतिहास से कटे आदमी की सड़ांघ को उजागर करती है। प्रेमचन्द की जन्मशताब्दी पर इन नेताओं ने भाषण-उद्घाटन का पुरजोर प्रदर्शन किया है, पर वे इतना भी नहीं जानते कि उर्दू को मध्यकालीन रियासती मानसिकता से निकालने वाले प्रेमचन्द ही थे।

इसलिए जब डा० जगन्नाथ मिश्र जैसे लोग अपने अज्ञान और अपनी जिद को राजनीतिक रंग देते हैं, तो खतरा यह होता है कि उनकी खंडित एवं विकृत मानसिकता कहीं राष्ट्रजीवन को भी खंडित एवं विकृत न कर दें।

उर्दू का जन्म हिन्दुस्तान में ही एक व्यावहारिक या बोलचाल की भाषा के रूप में हुआ जिसे बाद में फारसी लिपि (विदेशी) प्रदान कर दी गयी। हिन्दी और उर्दू भाषाएँ दो जुड़वा बहनों के समान है जिनमें अन्तर मात्र लिपि का है।

पठान, तुर्क, बलूची, पख्तूनी, अरबी, इरानी, मंगोल आदि सैनिकों को मिलाकर मुगल सेना बनी थी। दिल्ली के आस पास बरेली, सहारनपुर मेरठ आदि खड़ी बोली के इलाके हैं। मुगल सैनिकों की अधिकांश छांवनिया दिल्ली, मेरठ, बरेली, सहारनपुर आदि इलाके में थी जो खड़ी बोली के इलाके हैं। ये सैनिक कवायद करने के बाद शाम को जब बाजारों में घूमते—खरीद फरीख्त करने निकलते तो खड़ी बोली में तुर्की, बलूची आदि शब्दों को मिलाकर वहाँ की स्थानीय जनता के साथ बोलने का प्रयास करते। तुर्की भाषा में पड़ाव के बाजारों को उर्दू कहते हैं। चूँकि पड़ाव के बाजारों में इस भाषा

का जन्म हुआ, इसलिये उर्दू (पड़ाव का बाजार) की भाषा उर्दू कही जाने लगी। जब तक खड़ी बोली में हिन्दी और संस्कृत के शब्द अधिक थे यह हिन्दी, हिन्दवी या रेख्ता ही रहा। किन्तु जब इस भाषा पर अरबी और फारसी का प्रभुत्व हो गया तो यह उर्दू कहलाने लगी। उसकी एक अपनी तर्जेबयाँ तैयार हुई। लेकिन ये तर्जे बयाँ किसी धर्म विशेष के अनुयायी की संपत्ति नहीं। यह नहीं भूलना चाहिए कि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह उर्दू के समस्त तर्जेबयाँ को उतार सकते थे। कृष्णचंदर, प्रेमचंद, राजेन्द्र सिंह बेदी, फिराक गोरखपुरी, प्रकाश पंडित, राम प्रसाद बिस्मिल, पं० रतन नाथ सरसार, अमृता प्रीतम किस धर्म के किस भाषा के, लेखक हैं? उसी प्रकार सहयात सुलाही, डा० मलिक मुहम्मद, राही मासूम रंजा हिन्दी के लेखक हैं।

हमारा पक्ष—

अतः हमारा विरोध उर्दू से नहीं, उसे द्वितीय राजभाषा बनाये जाने से है। एक राज्य एक भाषा के सिद्धान्त में हमारा विश्वास है। इस सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं कि एक राज्य में एक राजभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा के विकास, प्रसार की सुविधा नहीं होगी। इसका अर्थ इतना ही है कि सरकारी काम काज की भाषा एक राज्य में एक ही होनी चाहिये। राजकीय स्तर पर यदि एक बार द्विभाषा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया तो एक-एक राज्य में अनेक भाषाओं को तथा प्रत्येक जिले में भी अनेक भाषा तथा बोलियो को राजभाषा का दर्जा देना होगा।

बिहार में उर्दू को दर्जा देने के साथ ही, मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका एवं संथाली आदि की राजभाषा की मांग प्रबल होती जा रही है। कुछ निहित स्वार्थी तत्त्वों ने इस भाषायी उन्माद की आड़ में मैथिली समाज, भोजपुरी समाज, मगही समाज, नागपुरी समाज, अंगिका समाज आदि के नाम पर अलग राज्यों की मांग भी उठानी प्रारम्भ कर दी है। एक विशेष भाषा-भाषी क्षेत्र में अन्य भाषा-भाषी समूह को नौकरियाँ न मिलें ऐसा भी प्रचार किया जा रहा है।

प्रारम्भ में मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका आदि बोलियाँ है, स्वतंत्र भाषा नहीं, बल्कि हिन्दी का ही एक-एक रूप है, ऐसा समझा जाता था। फलतः १९५१ की जनगणना में घर में मैथिली, भोजपुरी बोलनेवालों ने भी मातृभाषा हिन्दी लिखाई जिसके कारण बिहार में हिन्दी भाषियों की संख्या ८८·४० प्रतिशत हो गयी। परन्तु १९६१ में क्षेत्रीय भावना के उभार के कारण हिन्दी भाषियों की संख्या ४४·३० प्रतिशत हो गयी। ७१ में पुनः बढ़ कर ७८·८८ प्रतिशत हो गयीं। १९८१ की जनगणना में प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा क्षेत्रीय भाषाओं को ही लिखाये ऐसा प्रचार किया जा रहा है, परिणामतः हिन्दी भाषियों की सँख्या ३० प्रतिशत से भी कम होने की सम्भावना है।

बिहार में राजभाषा की घोषणा होते ही उ० प्रदेश सरकार ने भी अपने राज्य में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देने पर विचार कर रहीं है। उर्दू को मुस्लिमों के साथ जोड़ कर प्रत्येक प्रान्त में यह मांग उठने वाली है आजादी के ३३ वर्षों के पश्चात भी हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है। अंग्रेजी का प्रभुत्व आज भी बरकरार है। अंग्रेजी आज भी सभी राज्यों की अघोषित प्रथम राजभाषा है। उड़िया, बंगला, हिन्दी, तमिल आदि अपने प्रान्तों में वस्तुतः द्वितीय राजभाषा के स्थान पर हैं। अब उर्दू को और स्थापित कर हम इस देश को किस देश में ले जाना चाहते हैं। इसी कारण १९२६ में उर्दू को कचहरी की भाषा बनाने की बात हुई तो देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इसका विरोध किया था। उसी प्रकार १९६७ में जब संविद सरकार ने उर्दू को द्वितीय राजभाषा का पद देने की घोषणा की तो लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् और डा० लक्ष्मी नारायण सुधांशु के हस्तक्षेप के कारण मामला टल गया।

सरकारी तंगनजरी एवं फिरकापरस्ती—

आखिर डा० जगन्नाथ मिश्र ने फिर उर्दू को क्यों राजभाषा का दर्जा दिया है। यह दर्जा दिये बिना उसका विकास सम्भव नहीं था ? क्या यह सच

नहीं है कि १९५८ में केन्द्र सरकार ने सभी राज्य सरकारो को यह निर्देश दिया था कि वे बच्चे जिनके अभिभावकों ने उर्दू मातृभाषा घोषित की है उनके लिये प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय में उर्दू शिक्षण की व्यवस्था एवं शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। उन इलाकों में जहाँ उर्दू भाषी अच्छी संख्या में हो वहाँ सभी दफ्तरों, न्यायालयों में उर्दू में आवेदन स्वीकार किये जायें तथा आदेश नियम प्रावधान आदि उर्दू में भी प्रसारित किये जायें। इतनी सुविधा के बाद भी उसे राजभाषा का दर्जा क्यों दिया गया? क्या कारण है कि राज्य विधान सभा और परिषद् से एक विपक्षी दल को छोड़ कर किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया।

कारण साफ है। राजनीतिज्ञों ने पहले तो उर्दू को मुसलमानों की भाषा मान लिया और फिर मुस्लिमों के थोक वोट पर प्रत्येक राजनीतिक दल की निगाह है। हर दल उन वोटों का सौदा कर रहा है। प्रत्येक की निगाह चुनावों पर है। इसी मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति ने देश का विभाजन कराया। देश का विभाजन १५ अगस्त १९४७ को हुआ होगा, परन्तु उसका बीजारोपण उस दिन हुआ जिस दिन पृथक निर्वाचन क्षेत्र की बात स्वीकार कर ली गई। सेना, पुलिस, नौकरियों में मुस्लिमों के लिए ३२ प्रतिशत आरक्षण की मांग उठ रही है। आसाम से विदेशियों को निकालने की ताकत किसी राजनैतिक दल में नहीं हैं, क्योंकि उनमें से अधिकांश अल्पसंख्यक समुदाय के हैं। मुरादाबाद, अलीगढ़, जमशेदपुर, कश्मीर की घटनाएँ अभी ताजी हैं। उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देकर बिहार के विखण्डन तथा देश के विभाजन का बीजारोपण हो चुका है।

इसके संभावित परिणाम—

उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दिये जाने से व्यापक दुष्परिणाम निकल सकते हैं, कुछ तो तात्कालिक होंगे और कुछ दूरगामी। संभावित दुष्परिणामों की व्यापकता का अनुमान निम्नांकित बानगी से ही लगाया जा सकता है—

तात्कालिक परिणाम—

★ नौकरियों में उर्दू जाननेवालों को प्राथमिकता मिलेगी। प्रत्येक उर्दू जाननेवाला हिन्दी जानता है, अतः एक उर्दू भाषी व्यक्ति की नियुक्ति से सरकार को अधिक लाभ है क्योंकि वह दोनों काम कर सकता है जबकि एक हिन्दी भाषी व्यक्ति की नियुक्ति के साथ सरकार को उर्दू जानने-वालों को भी अलग से नियुक्त करना पड़ेगा।

★ आवश्यकता हो अथवा नहीं प्रत्येक प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक सभी स्कूलों में उर्दू शिक्षकों की नियुक्ति एवं उर्दू विभाग की स्थापना करनी होगी। परिणामतः करीब ७० हजार उर्दू शिक्षक तत्काल नियुक्त करने होंगे।

★ परीक्षाओं में प्रश्न पत्र हिन्दी-अंग्रेजी के साथ-साथ उर्दू में भी छापने होंगे। किसी भी विषय की उत्तर पुस्तिका उर्दू में लिखने का अधिकार होगा। इस उत्तर पुस्तिका को अनुवादक से ही जाँच करानी होगी।

★ सभी सरकारी दफ्तरों, रेलवे स्टेशन के नामपट्ट, साइन बोर्ड, मील के पत्थर, सवारी गाड़ियों के अंक, अब उर्दू में भी लिखने होंगे।

★ सरकार की समस्त सूचनाएँ, अधिसूचना, स्मार-पत्र, अनुशंसा, टिप्पणी, राजपत्र एवं सरकार द्वारा प्रसारित सभी घोषणाएँ अब उर्दू में भी करनी होगी।

★ विधान सभा की समस्त कारवाई, अब उर्दू में भी लिखनी होगी। कोई भी सदस्य उर्दू में ही लिखित प्रश्न कर सकता है और सरकार को उसका जवाब उर्दू में ही देना पड़ेगा।

★ मतदाता सूची, जनगणना, राशन कार्ड, गजट आदि सभी उर्दू में भी प्रकाशित करनी होगी।

★ हाईकोर्ट, लोअर कोर्ट, राजस्व के मुकदमे, भूमि विवाद के मामले अन्य Tribunals में सारा काम उर्दू में भी करना होगा। उर्दू में दी गयी याचिका की सुनवाई उर्दू में करनी होगी।

★ सभी दफ्तरों में अनुवादक के साथ-साथ उर्दू टाइपराइटर भी रखने होंगे।

★ ब्लाक, सबडिविजन, जिला, राज्य के सभी दफ्तरों, थाना, सिंचाई विभाग, राशनिंग दफ्तर आदि सभी कार्य उर्दू में भी होंगे। कोई भी व्यक्ति यदि प्रार्थना पत्र, आवेदन, F I R आदि उर्दू में देगा तो वह स्वीकृत होगा और उसका जवाब उर्दू में देना होगा।

परिणामतः सरकार के सभी दफ्तरों में हजारों की सख्या में उर्दू के जानकर नियुक्त करने होंगे।

★ सरकार यह कह रही है कि किसी को भी उर्दू पढ़ने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा। बिहार में अंग्रेजी आज भी ऐच्छिक विषय है, परन्तु सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी होने के कारण ऐच्छिक होते हुए भी अंग्रेजी जाननेवालों को ही नौकरियों में प्राथमिकता मिलती है। परिणामतः ऐच्छिक होते हुए भी अंग्रेजी पढ़ने की होड़ लगी है। उसी प्रकार उर्दू भी पढ़ना आवश्यक हो जायेगा।

परिणाम स्वरूप राज्य का प्रशासनिक व्यय करीब २५ करोड़ रुपये बढ़ जायेगा।

दूरगामी परिणाम—

१. इससे मानसिक पृथकतावाद पनपेगा और भाषा को धार्मिक आधारों पर बाँटने का सरकारी षडयंत्र सामान हो सकता है। स्मरण रहे कि सन् ४७ के देश विभाजन की जिम्मेदारी धार्मिक विभेद नहीं बल्कि मानसिक पृथकतावाद की है। १० प्रतिशत से अधिक अन्य भाषा-भाषियों की भाषाओं को राजभाषा बनाये जाने से समाज के कितने सरकारी टुकड़े बन सकते है इसका अनुमान भर किया जा सकता है।

२. भाषा पर किसी धर्म विशेष का चश्मा लग जाने के बाद एक ओर तो तंगनजरी पनपेगी दूसरी ओर प्रतिक्रिया होगी; जिससे समाज जीवन के बँट जाने का खतरा है।

३. जरूरत इस बात की थी और है कि सभी भारतीय भाषाओं की निजी पहचान को सुरक्षित रखते हुये, उन्हें एक राष्ट्र भाषा के बिन्दु पर समायोजित किया जाता, किन्तु इस प्रकार के राजकीय प्रयासों से वैसा नहीं हो सकेगा। और तब न तो हिन्दी में कोई राही मासूम रजा या डा० मल्लिक मुहम्मद हो सकेगा और न उर्दू में प्रेमचन्द या अमृताप्रीतम। राजनीतिज्ञों की कूढ़मगजी से भाषायी कूपमंडूकता पनपने का खतरा स्पष्ट है।

द्वितीय राजभाषा के रूप में उर्दू को स्वीकारने वाले राजनेताओं से हमारी अपील है कि वे अपनी अक्ल और होशोहवास को दुरुस्त रखें। वे कृपापूर्वक देश के समाज जीवन को समरस रहने दे। अपनी फिरकापरस्ती, मानसिक पृथकतावाद, वोटवाद, तथा तथाकथित बौद्धिकता को अपने पास ही रखें।

इसके साथ ही राष्ट्र का हम आह्वान करते है कि फिरकापरस्त राजनेताओं के उस षडयन्त्र को, जो बिहार में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देने के प्रयास में निहित है, विफल करने के लिए किये जा रहे हमारे संघर्ष मे सहयोग दे।

साथ ही राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री को एक टेलीग्राम या पत्र के माध्यम से द्वितीय राजभाषा अध्यादेशों का वापस लेने का आग्रह करें।

★

राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता द्वारा द्वितीय राजभाषा विरोधी संघर्ष समिति, यादव भवन, नयाटोला, पटना-८००००४ के लिए प्रकाशित एवम् लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, नयाटोला, पटना-८००००४ से मुद्रित।